आचार्य अनन्तवीर्यकी सिद्धिविनिश्चयटीकाका वैदुष्यपूर्ण संपादन : एक समीक्षा

• डॉ० दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य, बीना

पूर्ववृत्त

लगभग ४९ वर्ष पूर्व ईस्वी सन् १९४६ में 'आचार्य अनन्तवीर्य और उनकी सिद्धिविनिश्चय टीका' शीर्षकसे एक शोधपूर्ण आलेख 'अनेकान्त' मासिक पत्रमें हमने लिखा था। उस समय यह टीका प्रकाशित नहीं हुई थी। उसके कोई १२ वर्ष बाद स्वर्गीय डॉ० पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्यके सुयोग्य सम्पादकत्वमें भारतीय ज्ञानपीठसे ई० १९५८ में प्रकाशित हुई। यह विशाल टीका दो भागोंमें प्रकट हुई है। इसके प्रथम भागके साथ सम्पादककी विद्वत्तापूर्ण अति महत्त्वकी १६४ पृष्ठकी विस्तृत प्रस्तावना भी सम्बद्ध है। आज यही ग्रन्थ हमारी समीक्षाका विषय है।

मूलग्रन्थ 'सिद्धि-विनिश्चय' है, जिसके रचयिता आचार्य अकलंकदेव हैं। अन्य न्यायविनिश्चयादि तर्क-ग्रन्थोंकी तरह इस पर भी उनकी स्वोपज्ञवृत्ति है और मूल तथा स्वोपज्ञवृत्ति दोनों ही अत्यन्त दुरुह एवं दुरवगम्य हैं। अतएव दोनों पर आचार्य अनन्तवीर्यने विशाल टीका लिखी है, जिसका नाम 'सिद्धि-विनिश्चयटीका' है।

उपलब्ध जैन साहित्यमें अनन्तवीर्य नामके अनेक आचार्य हुए हैं। पर उनमें दो अनन्तवीर्य अधिक विश्रुत हैं। एक वे हैं जिन्होंने आ० माणिक्यनन्दिके 'परीक्षामुख' पर 'परीक्षामुखपञ्जिका' नामक वृत्ति लिखी है[1] और जिसे 'प्रमेयरत्नमाला' नामसे अभिहित किया जाता है।[2] ये अनन्तवीर्य परीक्षामुखालंकार प्रभाचन्द्रसे उत्तरकालीन हैं और लघु अनन्तवीर्य कहे जाते हैं। इन्होंने स्वयं प्रमेयरत्नमालाके आरम्भमें प्रभाचन्द्र और उनके प्रमेयकमलमार्त्तण्ड (परीक्षामुखालंकार) का उल्लेख किया है।[3] इनका समय १२वीं शती है।

दूसरे अनन्तवीर्य वे हैं, जिन्होंने प्रस्तुत सिद्धिविनिश्चयटीका लिखी है और जिन्हें बृहदनन्तवीर्य कहा जाता है। ये अकलंकदेवके प्रौढ़ और सम्भवतः आद्य व्याख्याकार हैं। प्रभाचन्द्र और वादिराज इन दोनों व्याख्याकारों द्वारा ये बड़े सम्मान एवं आदरके साथ अपने पथप्रदर्शकके रूपमें स्मरण किये गये हैं। प्रभाचन्द्र लिखते हैं कि अकलंकदेवकी संक्षिप्त, गहन और दुर्गम पद्धतिको अनन्तवीर्यके व्याख्यानों परसे सैकड़ों बार सम्यक् अभ्यास करके तथा विवेचन करके बड़े पुण्योदयसे प्राप्त (ज्ञात) कर पाया हूँ।[4] इससे यह प्रकट है कि जहाँ ये अनन्तवीर्य प्रभाचन्द्र (११वीं शती) से पूर्ववर्ती हैं वहाँ वे उनकी असाधारण विद्वत्ताको भी मानते हैं और अकलंकदेवकी दुरुह कथन शैलीका मर्मोद्घाटक एवं स्पष्ट करनेवाला प्रतिभाशाली सारस्वत भी बतलाते हैं।

स्याद्वाद विद्यापति वादिराज (ई० १०२५) कहते हैं कि अकलंकदेवके गूढ़ पदोंका अर्थ अनन्तवीर्यके वचन-प्रदीप द्वारा ही मैं अवलोकित कर सका[5]। यही वादिराज एक दूसरे स्थानपर अनन्तवीर्यको

१. प्रमेयरत्न पृ० २। २. वही, प्रशस्ति, पृ० २१०।
३. वही, पृ० २, श्लोक ३।
४. न्यायकुमुद० द्वि० भा० ५-३०, पृ० ६०५।
५. न्यायवि० विव०, भाग २, १-३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्दना करते हुए लिखते हैं कि मैं अनन्तवीर्यरूपी मेघको वन्दन करता हूँ, जिन्होंने अपनी वचनामृत वर्षाके द्वारा जगतको ध्वंस करनेवाली शून्यवादरूपी अग्निको बुझाया[1]। अतः ये अनन्तवीर्य इन दोनों (प्रभाचन्द्र और वादिराज (१०२५) व्याख्याकारोंसे पूर्ववर्ती हैं। तथा विद्यानन्द (७७५-८४०) के समकालीन हैं, क्योंकि दोनोंमें किसीने किसीका उल्लेख नहीं किया। अतः अनन्तवीर्यका समय विद्यानन्दका समय (८वीं-९वीं शती) जान पड़ता है।[2]

सिद्धिविनिश्चय-टीका

ऊपर हम कह आये हैं कि यह टीका अकलंकदेवके स्वोपज्ञवृत्ति सहित सिद्धिविनिश्चय की है। अकलंकदेवके जितने तर्कग्रन्थ हैं वे सभी दुरवगाह, दुरधिगम्य हैं। टीकाकार अनन्तवीर्य उनकी गहनता प्रकट करते हुए स्वयं कहते हैं—

देवस्यानन्तवीर्योऽपि पदं व्यक्तुं तु सर्वतः।
न जानीतेऽकलङ्कस्य चित्रमेतत्परं भुवि ॥ ३ ॥

अर्थात्—मैं अतन्तवीर्य होकर भी अकलंकदेवके पदोंको पूर्णतः व्यक्त करना नहीं जानता। इस लोकमें यह बड़ा आश्चर्य है।

उस समय ऐसे गहन और संक्षिप्त प्रकरणोंका रचयिता बौद्ध तार्किक धर्मकीर्तिको माना जाता था। अनन्तवीर्य उनकी अकलंकके साथ तुलना करते हुए लिखते हैं—

सर्वधर्मस्य नैरात्म्यं कथयन्नपि सर्वथा।
धर्मकीर्तिः कथं गच्छेदाकलङ्कं पदं ननु ॥ ५ ॥

अर्थात्—सर्व धर्मकी निरात्मकताका कथन करनेवाला धर्मकीर्ति भी अकलङ्कके पदकी-समानताको कैसे प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् नहीं।

इससे प्रकट है कि अकलंककी रचनाएँ बेजोड़ और अत्यन्त दुरूह हैं।

इनकी दो तरहकी रचनाएँ हैं—(१) टीकात्मक और (२) मौलिक। टीकात्मक दो हैं—(१) तत्त्वार्थ-वार्तिक (स्वोपज्ञभाष्य सहित) और (२) अष्टशती (देवागम-विवृति-देवागमभाष्य)। तत्त्वार्थवार्तिक भाष्य आ० गृद्धपिच्छके तत्त्वार्थसूत्रकी विस्तृत व्याख्या है और अष्टशती स्वामी समन्तभद्रके देवागम (आप्त-मीमांसा) की विवृति/भाष्य है।

मौलिक ग्रन्थ निम्न हैं—

१. लघीयस्त्रय (प्रमाण, नय और निक्षेप इन तीन प्रकरणोंका समुच्चय), २. न्यायविनिश्चय (स्वोपज्ञवृत्तियुत) ३. सिद्धिविनिश्चय (स्वोपज्ञवृत्तिसहित) और ४. प्रमाणसंग्रह (स्वोपज्ञवृत्तियुक्त) ये सब संक्षिप्त और सूत्ररूप हैं।

अष्टशतीको वेष्टित करके विद्यानन्दने देवागम पर अपनी विद्वत्तापूर्ण अष्टसहस्री (देवागमालंकार टीका) लिखी है। लघीयस्त्रय और उसकी स्वोपज्ञवृत्तिपर प्रभाचन्द्रने 'लघीयस्त्रयालंकार' अपरनाम 'न्याय-कुमुदचन्द्र' नामकी विशाल व्याख्या रची है। 'न्यायविनिश्चय' पर मात्र उसकी कारिकाओंको लेकर वादि-

---

१. पार्श्व० च०।

२. जैनदर्शन और प्रमाणशास्त्र परिशीलन, पृ० २५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजने 'न्यायविनिश्चयविवरण' अथवा 'न्यायविनिश्चयालंकार' नामक वैदुष्यपूर्ण बृहद् व्याख्या लिखी है। उसकी स्वोपज्ञवृत्ति को उन्होंने छोड़ दिया है, इसीसे उन्होंने सन्धि वाक्योंमें 'कारिका विवरण' शब्दका प्रयोग किया है। फलतः वह आज अनुपलब्ध है। 'सिद्धिविनिश्चय' और प्रमाणसंग्रह तथा इनकी स्वोपज्ञवृत्तियोंपर अनन्तवीर्यने अपनी महान् व्याख्याएँ—सिद्धिविनिश्चयटीका और प्रमाणसंग्रहभाष्य लिखी हैं। अकलंकके इन व्याख्याकारोंमें अनन्तवीर्यका उन्नत स्थान है और संभवतः वे ही अकलंकके आद्य व्याख्याकार हैं। यदि विद्यानन्द अनन्तवीर्यसे पूर्ववर्ती हैं तो वे अकलंकके प्रथम व्याख्याकार हैं, क्योंकि उनकी अष्टशतीपर अष्टसहस्री लिखनेवाले विद्यानन्द हैं। यद्यपि विद्यानन्दने अष्टसहस्री अष्टशतीपर न लिखकर देवागम (आप्तमीमांसा) पर लिखी है। किन्तु अष्टशती लिखी जानेके बाद अष्टसहस्री लिखी गयी है क्योंकि विद्यानन्दने अष्टशती को अष्टसहस्रीमें ऐसा आवेष्टित किया है, मानो वह अष्टसहस्रीका ही अपना आत्मीय अंश है।

अनन्तवीर्यने प्रभाचन्द और वादिराजकी तरह दार्शनिक एवं तार्किक चर्चाओं को न देकर अकलंक के पदोंके साकांक्ष हार्दको ही पूर्णतः व्यक्त करनेका प्रयत्न किया है और वे अपने इस प्रयत्नमें सफल भी हुए हैं। वे अकलंकके प्रत्येक पद, वाक्यादिका समासादि द्वारा योग्यतापूर्ण सुस्पष्ट व्याख्यान करते हैं। कहीं-कहीं दो-दो, तीन-तीन व्याख्यान करते हुए पाये जाते हैं। अनन्तवीर्यको हम प्रज्ञाकरकी तरह परपक्षके निराकरणमें मुख्य पाते हैं, स्वपक्ष साधन तो उनके लिए उतना ही है, जितना मूलसे ध्वनित होता है। अकलंककी चोट यदि धर्मकीर्तिपर है तो अनन्तवीर्यकी उनके प्रधान टीकाकार प्रज्ञाकर पर है। अपनी इस टीकामें उन्होंने प्रज्ञाकरका बीसियों जगह नामोल्लेख करके उनके मतका कदर्थन किया है। उनके प्रमाणवार्तिकालंकारके तो अनेक स्थलोंको उद्धृत करके उसका सर्वाधिक समालोचन किया है। हमारा अनुमान है कि अनन्तवीर्यने जो प्रमाणसंग्रहालंकार/प्रमाणसंग्रहभाष्य लिखा था, जिसका उल्लेख स्वयं उन्होंने सिद्धिविनिश्चयालंकारमें किया है और जो आज अनुपलब्ध है वह प्रज्ञाकरके प्रमाणवार्तिकालंकारके जवाबमें ही लिखा होगा। दोनोंका नाम साम्य भी यही प्रकट करता है। कुछ भी हो, यह अवश्य है कि अनन्तवीर्यने सबसे ज्यादा प्रज्ञाकरका ही खण्डन किया है, जैसे अकलंकने धर्मकीर्तिका। अतः जैन साहित्यमें अकलंकके टीकाकारोंमें अनन्तवीर्यका वही गौरवपूर्ण स्थान है जो बौद्ध न्याय-साहित्यमें धर्मकीर्तिके टीकाकारोंमें प्रधान टीकाकार प्रज्ञाकरको प्राप्त है और इसलिए अनन्तवीर्यको जैन साहित्यका प्रज्ञाकर कहा जा सकता है।

इनका व्यक्तित्व और वैदुष्य इसीसे जाना जा सकता है कि उत्तरवर्ती प्रभाचन्द्र, वादिराज जैसे टीकाकारोंने उनके प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा और सम्मान प्रकट किया है तथा अकलंक पदोंका उन्हें तलस्पर्शी एवं मर्मज्ञ व्याख्याकार कहा है। अकलंककी न्यायकृतियोंमें वस्तुतः सबसे अधिक विलष्ट और दुर्बोध प्रमाणसंग्रह और सिद्धिविनिश्चय हैं। अनन्तवीर्यने इनपर ही अपनी व्याख्याएँ लिखी हैं। यद्यपि उनके सामने अकलंकके न्यायविनिश्चय और लघीयस्त्रय ग्रन्थ भी थे और जो अपेक्षाकृत उनसे सरल हैं। किन्तु उनपर व्याख्याएँ नहीं लिखीं। इससे अनन्तवीर्यकी योग्यता, बुद्धि वैभव और अदम्य साहस प्रतीत होते हैं। इसीसे ये अनन्तवीर्य 'बृहदनन्तवीर्य' कहे जाते हैं।

अनन्तवीर्यकी गुरु परम्परा

अनन्तवीर्यने अपनी इस टीकामें प्रत्येक प्रस्तावके अन्तमें केवल अपने साक्षात् गुरुका नाम 'रविभद्र' दिया है और अपनेको उनका पादोपजीवी—शिष्य बतलाया है। ये रविभद्र कौन थे ? इस सम्बन्धमें न टीकाकारने कुछ परिचय दिया और न अन्य साधनोंसे कुछ अवगत होता है। इतना ही ज्ञात होता है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे उस समयके विशिष्ट विद्वानाचार्य थे, जिनके चरणोंमें बैठकर अनन्तवीर्यने शिक्षण प्राप्त किया होगा। एक बात यह भी प्रकट होती है कि इन अनन्तवीर्यके पूर्व या समसमयमें अनन्तवीर्य नामके दूसरे भी विद्वान् होंगे, जिनसे व्यावृत्त करनेके लिए ये अपनेको 'रविभद्रपादोपजीवी अनन्तवीर्य बतलाते हैं।

अनन्तवीर्यने जो ग्रन्थ रचे हैं वे व्याख्या ग्रन्थ हैं। सम्भव है इन्होंने मौलिक ग्रंथ भी रचा हो, जो आज उपलब्ध नहीं है। व्याख्या ग्रन्थ उनके निम्न दो हैं—(१) प्रमाणसंग्रहभाष्य और (२) सिद्धिविनिश्चयटीका। प्रमाणसंग्रहभाष्य अनुपलब्ध है, केवल इसके सिद्धिविनिश्चयटीकामें अनेक जगह उल्लेख आये हैं। इससे मालूम होता है कि वह महत्त्वपूर्ण और एक विशाल व्याख्या ग्रन्थ है। सिद्धिविनिश्चयटीका प्रस्तुत है, जिसका परिचय यहाँ अंकित है।

सिद्धिविनिश्चयटीकाकी उपलब्धिका दिलचस्प और दुःखपूर्ण इतिहास / परिचय श्रद्धेय इतिहासविद् पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारने 'अनेकान्त' वर्ष १, किरण ३ में 'पुरानी बातोंकी खोज' शीर्षक लेखमें दिया है, जिसमें उन्होंने बताया है कि यह टीका एक श्वेताम्बर जैनशास्त्र भण्डारमें सुरक्षित थी, वहाँसे यह प्राप्त हुई। जिनदास गणि महत्तरने 'निशीथचूर्णि और श्रीचन्द्रसूरिने 'जीतकल्पचूर्णि' में सिद्धिविनिश्चयको दर्शन प्रभावक शास्त्र बतलाया है। इससे अकलंकके 'सिद्धिविनिश्चय' की गरिमा और माहात्म्य प्रकट होता है।

अनन्तवीर्यने मंगलाचरणके बाद टीका आरम्भ करते हुए अकलंकके वचनों को अति दुर्लभ निरूपित किया है—

अकलंकवचः काले कलौ न कलयाऽपि यत्।
नृषु लभ्यं क्वचिल्लब्ध्वा तत्रैवास्तु मतिर्मम ॥ २ ॥

'अकलंकके वचनोंकी एक कला / अंश भी मनुष्यों को अलभ्य है। कहीं प्राप्त हो जाये तो मेरी बुद्धि उसीमें लीन रहे।'

इसके आगे एक अन्य पद्य द्वारा अकलंकके वाङ्मयको सद्रत्नाकर—समुद्र बतलाया है और उसके सूक्त-रत्नोंको अनेकों द्वारा यथेच्छ ग्रहण किये जानेपर उसके कम न होनेपर भी उसे सद्रत्नाकर ही प्रकट किया है। वह सुन्दर और प्रिय पद्य इस प्रकार है —

अकलंक वचोम्भोधेः सूक्त-रत्नानि यद्यपि।
गृह्यन्ते बहुभिः स्वैरं सद्रत्नाकर एव सः ॥ ४ ॥

इसमें अकलंकने बारह (१२) प्रस्ताव रखे हैं। धर्मकीर्तिने प्रमाणवार्तिकमें परिच्छेद नाम चुना है और अकलंकने परिच्छेदार्थक 'प्रस्ताव' नाम दिया है। वे बारह प्रस्ताव निम्न प्रकार हैं—१. प्रत्यक्षसिद्धि, २. सविकल्पकसिद्धि, ३. प्रमाणान्तरसिद्धि, ४. जीवसिद्धि, ५. जल्पसिद्धि. ६. हेतुलक्षणसिद्धि, ७. शास्त्रसिद्धि, ८. सर्वज्ञसिद्धि, ९. शब्दसिद्धि, १०, अर्थनयसिद्धि, ११. शब्दनयसिद्धि और १२. निरक्षेपसिद्धि। प्रस्तावोंमें विषयका वर्णन उनके नामोंसे ही अवगत हो जाता है।

टीकामें मूलभाग उस प्रकारसे अन्तर्निहित नहीं है जिस प्रकार प्रभाचन्द्रके न्यायकुमुदचन्द्रमें लघीयस्त्रय और उसकी स्वोपज्ञवृत्ति है। किन्तु कारिका और उसकी वृत्तिके आदि अक्षरोंके प्रतीक मात्र दिये गये हैं। इससे यह जानना बड़ा कठिन है कि यह मूल कारिका-भाग है और यह उसकी वृत्ति है। टीकासे अलग मूलकारिका भाग तथा वृत्तिभाग अन्यत्र उपलब्ध नहीं, जिसकी सहायतासे उसे टीका परसे अलग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया जा सके। निःसन्देह इसके लिये बड़े परिश्रम की आवश्यकता है। स्व० पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार ने इस दिशामें कुछ प्रयत्न करके निम्न मंगलाचरण कारिकाको उद्धृत किया था—

सर्वज्ञं सर्वतत्त्वार्थस्याद्वादन्यायदेशिनम्।
श्रीवर्द्धमानमभ्यर्च्य वक्ष्ये सिद्धिविनिश्चयम्॥

हमने भी एक कारिकाको उद्धृत किया है वह यह है—

समर्थवचनं जल्पं चतुरङ्गं विदुर्बुधाः।
पक्षनिर्णयपर्यन्तं फलं मार्ग प्रभावना॥

—हस्त-लि० प्रति पृ० ७३५ (प्रस्ता० ५)।

सम्पादकका स्तुत्य प्रयत्न

स्व० डॉ० पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यने बहु प्रयास करके उन दोनोंको टीका परसे उद्धृत किया है। इस दुष्कर कार्यमें उन्हें पाँच वर्ष लगे थे। यह उनका अदम्य साहस था। टीकाका योग्यतापूर्ण सम्पादन किया है। ग्रन्थके साथ १६४ पृष्ठकी महत्त्वपूर्ण एवं असाधारण परिश्रमसे लिखी गयी प्रस्तावना भी निबद्ध की गयी है, जिसमें ग्रन्थकार, ग्रन्थ और सम्पादन सामग्रीकी योजना पर विस्तृत विमर्श किया गया है। ग्रन्थकार-भागमें जैन न्यायके ग्रन्थकारोंका विस्तारसे शोधपूर्ण परिचय दिया गया है। ग्रन्थ-भागमें प्रमाण, नय, निक्षेप, सर्वज्ञ, स्याद्वाद, अनेकान्त, सप्तभंगी प्रभृति विषयों पर सूक्ष्म प्रकाश डाला गया है।

भारतीय दर्शनोंके विशेषज्ञ डॉ० गोपीनाथ कविराज और तत्कालीन उत्तर प्रदेशके मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानन्दके प्राक्कथन भी ग्रन्थके आरम्भमें दिये गये हैं।

सबसे बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि इस ग्रन्थके सम्पादनमें शतशः ग्रन्थोंका अनुशीलन सम्पादकके घोर परिश्रम और अध्ययनको सूचित करता है। पण्डितजीको इसपर काशी हिन्दू विश्वविद्यालयने पी०-एच० डी० की उपाधि प्रदान कर उनके पाण्डित्यका सम्मान भी किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org